

यच्चित्तोन्नतपर्वतस्य पुरतः प्रोत्तुङ्गभूभृद्गणोऽ-
णुत्वं याति सरित्पतिस्तु नितरां दर्भाग्रबिन्दूपमाम्।
स श्रीमान्वृषभादिसेनजिनपः प्रध्वस्तकर्मा विभु-
र्दद्यात्स्वस्य गुणश्रियं गुणनिधिर्मे सर्वसिद्धिप्रदाम् ॥२८॥
इति कथाकोशे श्रीवृषभसेनमुनेराख्यानं समाप्तम्।

६६. कार्तिकेयमुनेराख्यानम्

केवलज्ञानसन्नेत्रं पवित्रं शर्मकारणम्। नत्वा जिनं प्रवक्ष्यामि कार्तिकेयकथानकम् ॥१॥
कार्तिकाख्यपुरे राजा संजातोऽग्न्यभिधानकः। राज्ञी वीरमती पुत्री कृतिका रूपमण्डिता ॥२॥
साथ नन्दीश्वराष्टम्यामुपवासं विधाय च। कृत्वा पूजां जिनेन्द्राणां शेषां पित्रे सुता ददौ ॥३॥
तदा तद्रूपमालोक्य दिव्यं राजाग्निवाक् कुधीः। सर्वलिङ्गीन्द्रजादींश्च दुष्टात्मा कामुकोऽवदत् ॥४॥
उत्पन्नं मद्गृहे रत्नं कस्य भो भवति ध्रुवम्। ब्रूत यूयं तदाकर्ण्य जगुस्ते मुग्धमानसाः ॥५॥
भो नरेन्द्र तवैव स्यात्ततः प्राहुर्मुनीश्वराः। कन्यारत्नं विना देव सर्वं ते नात्र संशयः ॥६॥

जिसके चित्तरूपी अत्यन्त ऊँचे पर्वत की तुलना में बड़े-बड़े पर्वत एक ना कुछ चीज परमाणु की तरह दीखने लगते हैं, समुद्र दूबा की अणी पर ठहरे जल कण सा प्रतीत होता है, वे गुणों के समुद्र और कर्मों को नाश करने वाले वृषभसेन जिन मुझे अपने गुण प्रदान करें, जो सब मनचाही सिद्धियों के देने वाले हैं ॥२८॥

६६. कार्तिकेय मुनि की कथा

संसार के सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों को देखने जानने के लिए केवलज्ञान जिनका सर्वोत्तम नेत्र है और जो पवित्रता की प्रतिमा और सब सुखों के दाता हैं, उन जिन भगवान् को नमस्कार कर कार्तिकेय मुनि की कथा लिखी जाती है ॥१॥

कार्तिकपुर के राजा अग्निदत्त की रानी वीरवती के कृतिका नाम की एक लड़की थी। एक बार अठाई के दिनों में उसने आठ दिन के उपवास किए। अन्त के दिन वह भगवान् की पूजा कर शेषा को-भगवान् के लिए चढ़ाई फूलमाला को लाई। उसे उसने अपने पिता को दिया। उस समय उसकी दिव्य रूपराशि को देखकर उसके पिता अग्निदत्त की नियत ठिकाने न रही। काम के वश हो उस पापी ने बहुत से अन्य धर्मी और कुछ जैन साधुओं को इकट्ठा कर उनसे पूछा-योगी-महात्माओं, आप कृपा कर मुझे बतलावें कि मेरे घर में पैदा हुए रत्न का मालिक मैं ही हो सकता हूँ या कोई और? राजा का प्रश्न पूरा होता है कि सब ओर से एक ही आवाज आई कि महाराज, उस रत्न के तो आप ही मालिक हो सकते हैं, न कि दूसरा। पर जैन साधुओं ने राजा के प्रश्न पर कुछ गहरा विचार कर इस रूप में राजा के प्रश्न का उत्तर दिया-राजन्, यह बात ठीक है कि अपने यहाँ उत्पन्न हुए रत्न के मालिक आप हैं, पर एक कन्या-रत्न को छोड़कर। उसकी मालिकी पिता के नाते से ही आप कर सकते हैं और रूप

तद्वाक्यं त्रिजगत्पूज्यं तच्चित्ते कष्टकोटिदम्। संजातं पापिनां युक्तं कथं पथ्यायते वचः ॥७॥
 ततस्तेन सुरुष्टेन देशान्निर्घाट्य तान्मुनीन्। स्वपुत्री कृत्तिका नाम्नी परिणीता स्वयं हठात् ॥८॥
 पापिनां कामिनां लोके भाविदुर्गतिदुःखिनाम्। क्व धर्मः क्व च लज्जासौ क्व नीतिः क्व च सम्मतिः ॥९॥
 कैश्चिद्विनैस्ततस्तस्यां कार्तिकेयो सुतोऽभवत्। पुत्री वीरमती जाता रूपलावण्यमण्डिता ॥१०॥
 रोहेडनगरे सा तु पुत्री क्रौंचमहीभुजे। दत्ता भोगान्प्रभुञ्जाना संस्थिता सुखतः सती ॥११॥
 चतुर्दशसु वर्षेषु गतेषु निजलीलया। कार्तिकेयः सुधीः क्रीडां कुर्वन्नेकदिने ततः ॥१२॥
 नमिप्रभृतितद्राजकुमाराणां मनोहरम्। मातामहात्समायातं दृष्ट्वा वस्त्रादिकं शुभम् ॥१३॥
 जगाद मातरं चेति भो मातस्ते पिता मम। किं कारणं कदा किञ्चिन्नैव प्रेषयते स्फुटम् ॥१४॥
 अश्रुपातं विधायोच्चैः कृत्तिका प्राह भो सुत। किं कथ्यते स महापापमेको मे ते पिता कुधीः ॥१५॥

में नहीं। जैन साधुओं का यह हित भरा उत्तर राजा को बड़ा बुरा लगा और लगना ही चाहिए क्योंकि पापियों को हित की बात कब सुहाती है? राजा ने गुस्सा होकर उन मुनियों को देश बाहर कर दिया और अपनी लड़की के साथ स्वयं ब्याह कर लिया। सच है, जो पापी हैं, कामी हैं जिन्हें आगामी दुर्गतियों में दुःख उठाना है, उसमें कहाँ धर्म, कहाँ लाज, कहाँ नीति-सदाचार और कहाँ सुबुद्धि? ॥२-९॥

कुछ दिनों बाद कृत्तिका के दो सन्तान हुई एक पुत्र और एक पुत्री। पुत्र का नाम रखा कार्तिकेय और पुत्री का नाम वीरमती। वीरमती बड़ी खूबसूरत थी। उसका ब्याह रोहेड़ नगर के राजा क्रौंच के साथ हुआ। वीरमती वहाँ रहकर सुख के साथ दिन बिताने लगी ॥१०-११॥

इधर कार्तिकेय भी बड़ा हुआ। अब उसकी उम्र कोई १४ वर्ष की हो गई थी। एक दिन वह अपने साथी राजकुमारों के साथ खेल रहा था। वे सब अपने नाना के यहाँ से आए हुए अच्छे-अच्छे कपड़े और आभूषण पहने हुए थे। पूछने पर कार्तिकेय को ज्ञात हुआ कि वे वस्त्राभरण उन सब राजकुमारों के नाना-मामा के यहाँ से आए हैं। तब उसने अपनी माँ से जाकर पूछा-क्यों माँ! मेरे साथी राजपुत्रों के लिए तो उनके नाना-मामा अच्छे-अच्छे वस्त्राभरण भेजते हैं, भला फिर मेरे नाना-मामा मेरे लिए क्यों नहीं भेजते हैं? अपने प्यारे पुत्र की ऐसी भोली बात सुनकर कृत्तिका का हृदय भर आया। आँखों से आँसू बह चले। अब वह उसे क्या कहकर समझाये और कहने को जगह ही कौन सी बच रही थी परन्तु अबोध पुत्र के आग्रह से उसे सच्ची हालत कहने को बाध्य होना पड़ा। वह रोती हुई बोली-बेटा, मैं इस महापाप की बात तुझसे क्या कहूँ। कहते हुए छाती फटती है। जो बात कभी नहीं हुई, वही बात मेरे तेरे सम्बन्ध में है। वह केवल यही कि जो मेरे पिता हैं वे ही तेरे भी पिता हैं। मेरे पिता ने मुझसे बलात् ब्याह कर मेरी जिन्दगी कलंकित की। उसकी करनी का तू फल है। कार्तिकेय को काटो तो खून नहीं। उसे अपनी माँ का हाल सुनकर बेहद दुःख हुआ। लज्जा और आत्मग्लानि से उसका हृदय तिलमिला उठा। इसके लिए वह लाइलाज था। उसने फिर अपनी माँ से पूछा-तो क्यों माँ! उस समय मेरे पिता को ऐसा अनर्थ करते किसी ने रोका नहीं, सब कानों में तेल डाले पड़े रहे? उसने कहा-बेटा!

तद्वृत्तकं समाकर्ण्य कार्तिकेयोवदत्पुनः। भो मातः किं पिता मेऽयं निषिद्धो नैव केनचित् ॥१६॥
तयोक्तं मुनिभिः पुत्र निषिद्धो बहुशो बुधैः। दुष्टो निर्घाटयामास स्वदेशात्तान्मुनीश्वरान् ॥१७॥
कीदृशास्ते सुतः प्राह मुनीन्द्रा गुणशालिनः। सा जगौ जैनतत्त्वज्ञा निर्ग्रन्था धर्मनायकाः ॥१८॥
मयूरकोमलोत्कृष्टपिच्छहस्ता दयान्विताः। कमण्डलुकरा दूरे ते तिष्ठन्ति दिगम्बराः ॥१९॥
जनन्या वचनं श्रुत्वा कार्तिकेयो विरक्तवान्। गृहान्निर्गत्य पूतात्मा गत्वा स्थानं मुनीशिनाम् ॥२०॥
नत्वा मुनीन्महाभक्त्या दीक्षामादाय शर्मदाम्। मुनिर्जातो जिनेन्द्रोक्त-सप्ततत्त्वविचक्षणः ॥२१॥
कृत्तिका जननी मृत्वा तदार्त्तन स्वकर्मणा। जाता व्यन्तरदेवी सा प्रोल्लसद्रूपसम्पदा ॥२२॥
कार्तिकेयो मुनिर्धीमान्विहरन्स तपोनिधिः। रोहेडनगरं प्राप्तो ज्येष्ठमासे गुणोज्ज्वलः ॥२३॥
अमावास्यादिने स्वामी चर्यायां संप्रविष्टवान्। प्रासादोपरिभूमिस्था दृष्ट्वा वीरमती च तम् ॥२४॥
भ्राता ममेति संज्ञात्वा पत्युः स्वोत्संगतः शिरः। परित्यज्य तदा शीघ्रं समागत्य प्रभक्तितः ॥२५॥

रोका क्यों नहीं? जैन मुनियों ने उन्हें रोका था, पर उनकी कोई बात नहीं सुनी गई, उल्टे वे ही देश से निकाल दिये गए ॥१२-१७॥

कार्तिकेय ने तब पूछा-माँ वे गुणवान् मुनि कैसे होते हैं? कृतिका बोली बेटा! वे कभी कपड़े नहीं पहनते, उनका वस्त्र केवल यह आकाश है। वे बड़े दयावान् होते हैं, कभी किसी जीव को जरा भी नहीं सताते! इसी दया को पूरी तौर से पालने के लिए वे अपने पास सदा मोर के अत्यन्त कोमल पंखों की एक पीछी रखते हैं और जहाँ उठते-बैठते हैं, वहाँ की जमीन को पहले उस पीछी से झाड़-पोंछकर साफ कर लेते हैं। उनके हाथ में लकड़ी का एक कमण्डलु होता है, जिसमें वे शौच वगैरह के लिए प्रासुक (जीवरहित) पानी रखते हैं। अपनी माता द्वारा जैन साधुओं की तारीफ सुनकर कार्तिकेय की उन पर बड़ी श्रद्धा हो गई उसे अपने पिता के कार्य से वैराग्य तो पहले ही हो चुका था, घर से निकल गया और मुनियों के स्थान तपोवन में जा पहुँचा। मुनियों का संघ देख उसे बड़ी प्रसन्नता हुई उसने बड़ी भक्ति से उन सब साधुओं को हाथ जोड़कर प्रणाम किया और दीक्षा के लिए उनसे प्रार्थना की। संघ के आचार्य ने उसे होनहार जान दीक्षा दे मुनि बना लिया। कुछ दिनों में ही कार्तिकेय मुनि, आचार्य के पास शास्त्राभ्यास कर बड़े विद्वान् हो गए। कार्तिकेय की जुदाई का दुःख सहना उसकी माँ के लिए बड़ा कठिन हो गया। दिनों-दिन उसका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा और आखिर वह पुत्र शोक से मृत्यु को प्राप्त हुई। मरते समय भी वह पुत्र के आर्तध्यान से मरी, अतः मरकर व्यन्तर देवी हुई। उधर कार्तिकेय मुनि घूमते-फिरते एक बार रोहेड़ नगरी की ओर आ गए, जहाँ इनकी बहिन ब्याही थी। ज्येष्ठ का महीना था। खूब गर्मी थी। अमावस्या के दिन कार्तिकेय मुनि शहर में आहार के लिए गए। राजमहल के नीचे होकर वे जा रहे थे कि ऊपर महल पर बैठी हुई उनकी बहिन वीरमती की नजर पड़ गई वह उसी समय अपनी गोद में सिर रखकर लेटे हुए पति के सिर को नीचे रखकर दौड़ी हुई भाई के पास आई और बड़ी भक्ति से उसने भाई को हाथ जोड़कर

तुभ्यं नमोस्तु वीरेति लग्ना तत्पादपद्मयोः। बन्धुत्वाच्च मुनित्वाच्च कस्य प्रीतिर्न जायते ॥२६॥
 तदा क्रौंचनृपः पापी दृष्ट्वा तां कामिनीं तथा। मारयामास तं क्रोधा-त्स्वशक्त्या मुनिनायकम् ॥२७॥
 पापी मिथ्यारतः प्राणी जैनधर्मपराङ्मुखः। किं करोति न दुष्कर्म जन्मकोटिप्रकष्टदम् ॥२८॥
 तदा शीघ्रं समागत्य व्यन्तरी जननीचरी। सा मयूरस्य रूपेण मूर्च्छितं मुनिसत्तमम् ॥२९॥
 दृष्ट्वा शीतलनाथस्य मन्दिरे सुमनोहरे। नीत्वा यत्नेन सद्भक्त्या स्थापयामास देवता ॥३०॥
 तत्रासौ कार्तिकेयस्तु मुनीन्द्रो जैनतत्त्ववित्। कृत्वा समाधिना कालं सम्प्राप्तः स्वर्गमुत्तमम् ॥३१॥
 देवैस्तत्र समागत्य कृता पूजा सुभक्तितः। स्वामी श्रीकार्तिकेयाख्यं ततोभूच्चेति तीर्थकम् ॥३२॥
 वीरमत्यास्तु सम्बन्धाद्भातृकादिद्वितीयकम्। लौकिकं पर्वसंजातं तदा प्रभृति भूतले ॥३३॥
 श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्रोक्तं शास्त्रं सन्देहनाशकम्। संभजन्तु बुधा नित्यं स्वर्गमोक्षसुखप्रदम् ॥३४॥
 सकलतत्त्वविलोकनदीपिका यदुदितां भुवनोत्तमभारती।
 स मम देवनिकायसमर्चितो दिशतु शाश्वतशर्म जिनाधिपः ॥३५॥
 इति कथाकोशे श्रीकार्तिकेयमुनेराख्यानं समाप्तम्।

नमस्कार किया। प्रेम के वशीभूत हो वह उसके पाँवों में गिर पड़ी और ठीक है-भाई होकर फिर मुनि हो तब किसका प्रेम उन पर न हो? क्रौंचराज ने जब एक नंगे भिखारी के पाँव पड़ते अपनी रानी को देखा तब उसके क्रोध का कुछ ठिकाना न रहा। उन्होंने आकर मुनि को खूब मार लगाई यहाँ तक कि मुनि मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। सच है, पापी, मिथ्यात्वी और जैनधर्म से द्वेष करने वाले लोग ऐसा कौन सा नीच कर्म नहीं कर गुजरते जो जन्म-जन्म में अनन्त दुःखों का देने वाला न हो ॥१८-२८॥

कार्तिकेय को अचेत पड़े देखकर उनकी पूर्वजन्म की माँ, जो इस जन्म में व्यन्तर देवी हो गई थीं, मोरनी का रूप ले उनके पास आई और उन्हें उठा लाकर बड़े यत्न से शीतलनाथ भगवान् के मन्दिर में एक निरापद जगह में रख दिया। कार्तिकेय मुनि की हालत बहुत खराब हो चुकी थी। उनके अच्छे होने की कोई सूरत न थी। इसलिए ज्योंही मुनि को मूर्च्छा से चेत हुआ उन्होंने समाधि ले ली। उसी दशा में शरीर छोड़कर वे स्वर्गधाम सिधारे। तब देवों ने आकर उनकी भक्ति से बड़ी पूजा की। उसी दिन से वह स्थान भी कीर्तिकेय तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ और बे वीरमती के भाई थे इसलिए 'भाई दूज' के नाम से दूसरा लौकिक पर्व प्रचलित हुआ ॥२९-३३॥

आप लोग जिन भगवान् द्वारा उपदिष्ट ज्ञान का अभ्यास करें। वह सब सन्देहों का नाश करने वाला और स्वर्ग तथा मोक्ष का सुख प्रदान करने वाला है। जिनका ऐसा उच्च ज्ञान संसार के पदार्थों का स्वरूप दिखाने के लिए दिये की तरह सहायता करने वाला है वे देवों द्वारा पूजे जाने वाले, जिनेन्द्र भगवान् मुझे भी कभी नाश न होने वाला सुख देकर अविनाशी बनावें ॥३४-३५॥

६७. अभयघोषमुनेराख्यानम् ।

संप्रणम्य जिनाधीशं सुराधीशैः समर्चितम् । मुनेरभयघोषस्य चरित्रं रचयाम्यहम् ॥१॥
 काकन्दीनगरे राजा संजातोभयघोषवाक् । राज्ञी चाभयमत्याख्या तस्याभूत्प्राणवल्लभा ॥२॥
 एकदाभयघोषेण पुरबाह्यं गतेन च । चतुष्पादेषु संबध्वा जीवन्तं कच्छपं दृढम् ॥३॥
 स्कन्धे यष्ट्यां विधायैव समागच्छंश्च धीवरः । दृष्टो राज्ञा स्वचक्रेण पापतोऽज्ञानभावतः ॥४॥
 चत्वारः कच्छपस्याशु छिन्नाः पादाः प्रमादिना । हन्ति पापीजनो जन्तून्विना न्यानेन दुष्टधीः ॥५॥
 कच्छपोसौ महाकष्टं मृत्वा तस्यैव भूपतेः । चण्डवेगः सुतो जातः कृत्वाकामप्रनिर्जराम् ॥६॥
 एकदासौ महीनाथः सुधीरभयघोषवाक् । चन्द्रग्रहणमालोक्य जातो वैराग्यमण्डितः ॥७॥
 अहो पापी दुरात्माहं जैनतत्त्वपराङ्मुखः । मोहान्धतमसाक्रान्तो महान्धे लोचने सति ॥८॥
 हिताहितं न पश्यामि मूढोहं पापमण्डितः । कथं संसारवारांशेः पारं यास्यामि निर्मलम् ॥९॥

६७. अभयघोष मुनि की कथा

देवों द्वारा पूजा भक्ति किए गए जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर अभयघोष मुनि का चरित्र लिखा जाता है ॥१॥

अभयघोष काकन्दी के राजा थे उनकी रानी का नाम अभयमती था । दोनों में परस्पर बहुत प्यार था । एक दिन अभयघोष घूमने को जंगल में गए हुए थे । इस समय एक मल्लाह एक बहुत बड़े और जीवित कछुए के चारों पाँव बाँध कर उसे लकड़ी में लटकाये हुए लिए जा रहा था । पापी अभयघोष की उस पर नजर पड़ गई उन्होंने मूर्खता के वश ही अपनी तलवार से उसके चारों पाँवों को काट दिया । बड़े दुःख की बात है कि पापी लोग बेचारे ऐसे निर्दोष जीवों को निर्दयता के साथ मार डालते हैं और न्याय-अन्याय का कुछ विचार नहीं करते ! कछुआ उसी समय तड़फड़ा कर गत प्राण हो गया । मरकर वह अकाम-निर्जरा के फल से इन्हीं अभयघोष के यहाँ चण्डवेग नाम का पुत्र हुआ ॥२-६॥

एक दिन राजा को चन्द्र-ग्रहण देखकर वैराग्य हुआ । उन्होंने विचार किया जो एक महान् तेजस्वी ग्रह है, जिसकी तुलना कोई नहीं कर सकता और जिसकी गणना देवों में है, वह भी जब दूसरों से हार खा जाता है तब मनुष्यों की तो बात ही क्या ? जिनके सिर पर काल सदा चक्कर लगाता रहता है । हाय, मैं बड़ा ही मूर्ख हूँ जो आज तक विषयों में फँसा रहा और कभी अपने हित की ओर मैंने ध्यान नहीं दिया । मोह रूपी गाढ़े अँधेरे ने मेरी दोनों आँखों को ऐसा अन्धा बना डाला, जिससे मुझे अपने कल्याण का रास्ता देखने या उस पर सावधानी के साथ चलने को सूझ ही न पड़ा । इसी मोह के पापमय जाल में फँस कर मैंने जैनधर्म से विमुख होकर अनेक पाप किए । हाय, मैं अब इस संसाररूपी अथाह समुद्र को पार कर सुखमय किनारे को कैसे प्राप्त कर सकूँगा ? प्रभो, मुझे